ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 99-102**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.- IV, Issues-38, YEAR- Oct.-Dec.2025

परिवार में महिलाओं की प्रस्थिति एवं वैधानिक सुधार

डॉ0 धन्नजय कुमार

असिस्टेन्ट प्रोफेसर– समाज शास्त्र, रघुवंश प्रसाद महाविद्यालय, हरनौत– नालंदा, (बिहार) भारत

Received-28.09.2025, Revised-05.10.2025, Accepted-12.10.2025 **E-mail : aaryvart2013@gmail.com**

***सारांशः** समकालीन भारत में नारी सम्बन्ध वैधानिक सुधार मुख्यतः विवाह, सम्बन्ध विच्छेद, सम्पत्ति अधिकार तथा वैश्यावृत्ति को लेकर हुए। 1904 में सयाजी राव गायकवाड़ ने अपने राज्य में बाल–विवाह निरोधक कानून प्रचलित किया, जिसमें बाल–विवाह करने वाले संरक्षक को दण्ड देने का विधान था। उन्हीं के द्वारा फिर 1910 में 'सिविल मैरिज कानून' बनाया गया, जिनको सम्पन्न करने के लिए किसी भी धार्मिक–विवाह विधि की अनिवार्यता आवश्यक नहीं समझी गई। सन् 1923 में पारित 'विशेष विवाह कानून' में भी संशोधन किया गया। इससे पूर्व इस कानून के अन्तर्गत विवाह करने वालों को यह घोषणा करनी पड़ती थी कि वे किसी धर्म या जाति पर विश्वास नहीं करते हैं। इस शोधन के उक्त संघोषणा के प्रतिबन्धों को हटा दिया गया। इसके उपरान्त 1925 में सम्पत्ति वय को वैवाहिक तथा अवैस्त्राहिक सीमा रेखाओं में विभाजित कर, 12 वर्ष के बदले, क्रमशः 13 वर्ष और 14 वर्ष में बढ़ा दिया।*

***कुंजीभूत शब्द–** नारी सम्बन्ध, वैधानिक सुधार, सम्बन्ध विच्छेद, अवैस्त्राहिक, सम्पत्ति अधिकार, वैश्यावृत्ति, धार्मिक–विवाह विधि।*

विवाह सम्बन्धी– 1928 में श्री एन.एम. जोशी की अध्यक्षता में 'सम्पत्ति वय समिति' नियुक्त की गई जिसने सम्पत्ति वय को वैवाहिक और अवैवाहिक परिस्थितियों में क्रमशः 15 वर्ष और 18 वर्ष में बढ़ाने का सुझाव दिया। इसी बीच में 1927 में श्री हर विलास सारदा द्वारा हिन्दू जाति में सम्पत्ति आयु विषयक एक विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत किया गया जिसमें कहा गया यह कानून हिन्दूओं के साथ–साथ सभी भारतियों पर लागू होना चाहिए। एक दूसरी प्रवर समिति की नियुक्त के बाद 1929 में बाल–विवाह निरोधक कानून पास किया गया जिसके अनुसार बालक और बालिका की न्यूनतम–विवाह आयु क्रमशः 18 वर्ष और 14 वर्ष ठहराई गई। 1856 में पारित 'विधवा–विवाह' के अनुसार पुनिर्ववाहिताओं की सम्पत्ति विषयक कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता था। इस दिशा में बम्बई प्रादेशिक समाज सुधार संस्था ने 1938 में उक्त कानून में संशोधन के निमित्त एक विधेयक प्रस्तुत किया, परन्तु उसका कोई सुपरिणाम नहीं निकला।[1] 1942 में बड़ौदा सरकार ने पूर्व विवाह–सम्बन्ध को विच्छेद किए बिना दूसरा विवाह करने के अधिकार पर रोक लगाने सम्बन्धी कानून प्रचलित किया। 1946 में बम्बई सरकार ने भी इस आशय का 'हिन्दू बहु–विवाह निरोधक कानून' लागू किया, जिसकी अवज्ञा करने पर 7 वर्ष के करावास तथा आर्थिक दण्ड का विधान था। इसी वर्ष 'हिन्दू विवाह अयोग्यता कानून' के पारित हो जाने से समान गोत्रीय विवाहों को मान्यता प्राप्त हुई। इसके तीन वर्ष उपरान्त 1949 में 'हिन्दू विवाह मान्यता कानून' के अन्तर्गत अन्तर्जातीय विवाहों के लिए अवसर प्रदान किया गया। 1954 में 'विशेष विवाह कानून' पारित हुआ जिसके अनुसार अपने पहले पति या पत्नी से सम्बन्ध–विच्छेद हो जाने अथवा उनकी मृत्यु हो जाने पर, स्त्री–पुरूष, यदि वे क्रमशः 18 वर्ष तथा 21 वर्ष की आयु के हैं, परस्पर विवाह–सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। महिलाओं को उच्चतर सामाजिक जीवन की स्वीकृति दिलाने के उद्धेश्य से सरकार द्वारा 1941 में श्री. बी. एन. राव की अध्यक्षता में एक बनाई गई थी, जिसने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में हिन्दू कानून के पुनर्निर्माण का समर्थक किया था। सरकार द्वारा स्वीकृत इस सुझाव के परिणामस्वरूप 1942 में इस आशय का एक विधेयक व्यवस्थापिका सभा के सन्मुख प्रस्तुत किया गया। व्यवस्थापिका सभी में प्रवर समिति के उत्तरदाधिकार सम्बन्धी कानून के साथ–साथ उक्त राव समिति द्वारा सम्पूर्ण हिन्दू कानून का मसविंदा पुनः तैयार करने का सुझाव दिया। इसी सुझाव का परिणाम 1957 का 'कोड बिल' था। जिसकी रूप–रेखा निर्माण करने में भारत के तत्कालीन विधि मन्त्री स्वर्गीय भीम राव अम्बेडकर ने बहुत प्रयत्न किया था। राव समिति द्वारा प्रस्तुत मसविदों पर 1948 में संसद की प्रवर समिति के विचार विनिमय के उपरान्त, उसमें परिवर्तन कर हिन्दू कोड बिल को हिन्दू विवाह विधेयक, हिन्दू उत्तराधिकार विधेयक, हिन्दू अल्पवयस्कता व संरक्षणता विधेयक तथा हिन्दू दत्तक ग्रहण और निर्वाह विधेयक के रूप में चार विभिन्न उप–विभागों में विभाजित करने तथा अधिनियम बनाने की बात का समर्थन किया। इसी के परिणाम स्वरूप 'हिन्दू विवाह विधेयक' 18 मई 1955 को पारित होकर अधिनियम बन गया। इस अधिनियम द्वारा बहु–विवाह का निषेध तथा परिस्थितियों में सम्बन्ध विच्छेद की अनुमति प्रदान की गई। इस अधिनियम के अनुसार एक विवाह की अनिवार्यता लागू हुई तथा इसके अन्तर्गत किए गये विवाहों के पंजीकरण की भी आवश्यकता नहीं समझी गई।

सम्बन्ध विच्छेद सम्बन्धी– विवाह–सम्बन्धी वैधानिक सुधारों के साथ–साथ इस काल में सम्बन्ध–विच्छेद भी कुछ कानून पारित किए गये। इस प्रकार के कानूनों का आरम्भ 1936 के 'पारसी विवाह एवं विच्छेद अधिनियम' से होता है, जिसके अनुसार विवाहोपरान्त एक वर्ष तक सम्भोग न करने, अस्वस्थ मस्तिष्क होने, विवाह से पूर्व पत्नी के गर्भवती होने तथा कारावास होने एवं पत्नी को वेश्यावृत्ति के लिए विवश करने आदि परिस्थितियों में पारसीक जाति में सम्बन्ध विच्छेद किया जा सकता है। 1937 में बड़ौदा राज्य में भी 7 वर्ष तक अज्ञातवास करने, धर्म परिवर्तन करने, क्रूर होने तथा मद्य होने आदि कारणों से परस्पर सम्बन्ध–विच्छेद कर लेने सम्बन्धी कानून पास किया गया। इसी आशय का कानून मुसलमानों में भी प्रचलित है। मुस्लिम पति, बिना कारण दिए ही केवल तीन बार 'तलाक' शब्द का उच्चारण कर, अपनी पत्नी से सम्बन्ध विच्छेद कर सकता है।[2] मुस्लिम पत्नी द्वारा अपने पति को तलाक देने सम्बन्धी दो प्रकार हैं, प्रथम न्यायालय के द्वारा तथा दूसरे स्वयं पति की अनुमति से। न्यायालय के द्वारा सम्बन्ध–विच्छेद की माँग करने सम्बन्धी नियम 1939 में पारित 'मुस्लिम विवाह–अधिनियम' के अनुसार व्यवहारित होते हैं। उपर्युक्त बड़ोदा के सम्बन्ध–विच्छेद सम्बन्धी नियम के सममानान्त 1947 में बम्बई में भी 'बम्बई हिन्दू सम्बन्ध विच्छेद अधिनियम' पारित हुआ, जिसके अनुसार हिन्दू नारी को सम्बन्ध–विच्छेद और पुनर्विवाह के क्षेत्र में अधिक अधिकारों की प्राप्ति हुई। हिन्दू मुस्लिम और पारसीक लोगों की भांति ईसाई मतसवलम्बी स्त्री–पुरूष भी 1954 के 'विशेष विवाह अधिनियम' के अनुसार परस्पर सम्बन्ध–विच्छेद कर सकते हैं। ईसाई मतावलम्बियों के अतिरिक्त यह अधिनियम उन पर भी लागू होता है जो इस नियम के अन्तर्गत विवाहित हुए हैं। सम्बन्ध–विच्छेद सम्बन्धी इन नियमों को परम्परा में हिन्दू कोड बिल के अन्तर्गत 1955 में पारित 'हिन्दू विवाह अधिनियम' विशेष उल्लेखनीय है। इसके अनुसार पति या पत्नी दूसरे व्यक्ति के व्यभिचारी होने, मत परिवर्तन करने, असाध्य रूप से पागल होने, संक्रामक अथवा असाध्य कुष्ठ रोग अथवा स्पर्श जन्य किसी भयंकर त्वचा रोग से पीड़ित होने, संन्यासी बन जाने, सात वर्ष तक जीवित रहने का समाचार न मिलने तथा न्यायालय

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.- IV, Issues-38, YEAR- Oct.-Dec.2025

द्वारा पृथक रहने का आदेश दिए जाने के उपरान्त दो वर्ष तक सहवास न हाने पर परस्पर सम्बन्ध–विच्छेद कर सकते हैं। इस अधिनियम के अनुसार पत्नी अपने बहु–विवाहित पति से भी सम्बन्ध–विच्छेद कर सकती है। सम्बन्ध विच्छेद–सम्बन्धी प्रार्थना पत्र विवाह की तिथि के तीन वर्ष बाद ही स्वीकार किया जाता है, किन्तु विशेष परिस्थितियों में उपर्युक्त तिथि से पूर्व भी न्यायालय प्रार्थी का प्रार्थना–पत्र स्वीकार कर सकते हैं।

सम्पत्ति अधिकार सम्बन्धी– सन् 1874 में 'विवाहित नारी सम्पत्ति अधिनियम' के अन्तर्गत नारी को जिस सम्पत्ति अधिकार का आभास मात्र हुआ था, उसका विकास 20वीं शताब्दी में स्त्र–धन के अधिकार के अतिरिक्त के अतिरिक्त भी अन्य बहुत–सी दिशाओं में हुआ। 1925 में 'भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम' के अन्तर्गत ईसाई तथा पारसी महिलाओं को अपने पति की सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त हुआ। 1927 में 'भारतीय परिमितता अधिनियम' (संशोधित) के अनुसार मृत पति की सम्पत्ति पर विधवा पत्नी का अधिकार वैध माना गया। 1929 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम' व्यवहारित हुआ, जिसके अनुसार दादा अथवा चाचा अथवा मातुल के बाद पुत्र की पुत्री, पुत्री की पुत्री, बहन तथा बहन के पुत्र को सम्पत्ति का उत्तराधिकारी माना गया।[3] सम्पत्ति सम्बन्ध अधिकारों का विकास 1933 में बड़ौदा राज्य में पारित अधिनियम द्वारा भी किया गया। इसके अनुसार विधवा को मृत पति की सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया। यदि वह स्वतन्त्र रहना चाहती है, तो उसे पुत्र के समान सम्पत्ति पर अधिकार था। अन्य था कि वह मृत की सम्पत्ति का पुत्र के साथ–साथ रहकर भी उपयोग कर सकती थी। 2000 रू. तक की सम्पत्ति पर विधवा के पूर्ण अधिकार का मान्यता प्रदान की गई। इसके उपरान्त 1937 में 'हिन्दू महिला सम्पत्ति अधिनियम' के अन्तर्गत भी विधवा के सम्पत्ति अधिकारों की व्याख्या की गई तथा 1942 में बम्बई सरकार ने बम्बई प्रदेश में उपर्युक्त नियम के आलोक में कृषि सम्बन्धी सम्पत्ति में भी नारी को अधिकार क्षेत्र प्रदान कर दिया।[4]

नारी द्वारा सम्पत्ति अधिकार प्राप्त करने के क्षेत्र में सबसे महत्त्वपूर्ण अधिनियम 'हिन्दू कोड बिल' के अन्तर्गत 17 जून 1956 को पारित 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम' है। इस अधिनियम का उद्धेश्य कन्याओं को उत्तराधिकार में सम्पत्ति प्राप्त करने का अधिकार देना तथा इस सम्बन्ध में स्त्री–पुरूष का भेदभाव हटा कर, प्रेम और स्नेह के आधार पर सम्पत्ति के उत्तराधिकारियों का क्रम तैयार करना है। इसके अनुसार हिन्दू महिला द्वारा अधिकृत प्रत्येक प्रकार की सम्पत्ति केवल उसी की है। हाँ, पुत्र की विधवा पत्नी, पोते की विधवा पत्नी तथा भाई की विधवा पत्नी ने यदि उत्तराधिकारी की घोषणा के समय या उससे पूर्व पुनर्विवाह कर लिया हो तो वे उत्तराधिकार के अधिकारी नहीं रह जाते। इस अधिनियम के अन्तर्गत नारी को सम्पत्ति सम्बन्धी वे सभी अधिकार प्राप्त हैं, जो कि पुरूष को और इस प्रकार से इस अधिनियम द्वारा नारी वर्ग के सम्पत्ति अधिकार सम्बन्धी दीर्घकाल से उपेक्षित इस पक्ष को प्रबल समर्थन प्रदान किया गया है।

वेश्यावृत्ति निवारण सम्बन्धी– वेशवृत्ति निवारण सम्बन्धी प्रयास 20वीं शती में इस वृत्ति के भयानक दुष्यपरिणामों की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ और महिलाओं को अनैतिक आचरण से मुक्ति दिलाने के उद्धेश्य से भिन्न–भिन्न राज्यों में समय–समय पर इस वृत्ति से सम्बन्धित कानून लागू हुए। इस दिशा में सर्वप्रथम बम्बई सरकार द्वारा 'बम्बई वेश्यावृत्ति निरोधक कानून' (1923) लागू करके किया गया। इसके उपरान्त मद्रास (1930), उत्तर प्रदेश (1933), बंगाल (1933), जम्मू कश्मीर (1934), पंजाब (1935), मैसूर (1936), बिहार (1938), पटियाला (1948), त्रावणकोर–कोचीन (1952), सौराष्ट्र (1952), हैदराबाद (1952), मध्य प्रदेश (1953), मध्य प्रदेश (1953) तथा अजमेर (1953) में भी अनैतिक व्यापार निरोध कानून लागू किए गए। इन कानूनों को प्रचलित करके वेश्वावृत्ति पर आयु सीमा का बन्धन लगा दिया गया। भिन्न–भिन्न राज्यों में आयु सीमा अलग–अलग रखी गई। इनके अतिरिक्त बम्बई का देवदासी कानून (1934), मद्रास का देवदासी कानून (1947) प्रमुख हैं। इन अधिनियमों के अनुसार इन राज्यों में बालिकाओं के कौमार्य को देवार्पित करके देवदासी बनाने की प्रथा अवैधानिक घोषित की गई। मद्रास में 1940 में अनैतिक व्यापार निरोधक सम्बन्धी जो कानून लागू हुआ था वही नियम आन्ध्र में भी प्रचलित हैं, तथा इसी आशय का बंगाल का 1933 में पारित अधिनियम दिल्ली में। इससे पूर्व 1929 में उत्तर प्रदेश में 'यू. पी. नामक बालिका कानून' पारित हुआ था जिसके अनुसार 18 वर्ष की अवस्था से पूर्व कोई भी बालिका वेश्यावृत्ति नहीं अपना सकती है। 'उत्तर प्रदेश अल्प–वयस्क बालिका रक्षा कानून' भी पारित किया गया जिसमें अल्प–व्यस्क बालिका को वेश्यवृत्ति अपनाने के लिए विवष करने वाले व्यक्ति को कठोर रूप से दण्डित करने की व्यवस्था की गई। सम्बन्धित महिलाओं की वेश्यावृत्ति और अनैतिक व्यापार सम्बन्धी विभ्रष्ट चारित्रिक व्यवसायों से बचाने की दिशा में केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्मित 'केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड' का प्रयास विशेष उल्लेखनीय है। इस बोर्ड द्वारा 24 दिसम्बर, 1954 को श्रीमती धन्वन्ती रामा राव की अध्यक्षता में 'सामाजिक और नैतिक स्वास्थ्य परामर्श समिति' स्थापित की गई। इस समिति द्वारा 30 सितम्बर, 1955 को प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त वेश्यावृत्ति तथा बालिकाओं के अनैतिक व्यापार का भी उल्लेख किया गया। इस समिति की सिफारिश के ही परिणाम स्वरूप 1956 में भारतीय लोक सभा ने 'महिला तथा बालिकाओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम' पारित किया। इसके साथ ही वेश्यालयों को अवैधानिक घोषित करने सम्बन्धी कानून भी लागू किया। भारतीय दण्ड विधा (धारा 366, 366 अ, 366 ब, 362, 373 तथा 376) के अन्तर्गत बालिका से यौन–सम्बन्ध स्थापित करने, उसे वेश्यावृत्ति कराने तथा अपहरण करने या कराने सम्बन्धी आयु–सीमा तथा परिस्थितियों का स्पष्टीकरण भी किया गया है।

समाज में महिलाओं की स्थिति में समय–समय पर उतार–चढ़ाव आए हैं। विभिन्न समाजों में भी उनकी स्थिति में विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। सामान्यतः पुरूषों की तुलना में उनकी सामाजिक प्रस्थिति निम्नकोटि की रही है। मध्यकालीन युग में उनकी दशाओं में और भी गिरावट आई, जो आने वाले समय में, यहाँ तक कि बहुत अंशों तक आज भी चलती आ रही है। परम्पराओं का प्रश्रय देने वाले समाजों में उन्हें कई प्रकार की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक असुविधाओं और असमर्थताओं को सहना पड़ता है। परिवार में, विशेषकर संयुक्त एवं पितृसत्तत्मक परिवार में, उन्हें पुरूषों के अधीनस्थ रहकर घर के जाटिल एवं दुष्कर कार्य करने पड़ते हैं। कई समाजों में उन्हें तीन प्रकार की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती थी– विवाह के पूव पिता की अधीनता, विवाह के बाद पति की अधीनता तथा विधवा होने या वृद्धावस्था की स्थिति में पुत्र की अधीनता। कई प्राचीन सभ्यताओं में पिता का अपनी पुत्री पत्नी पर असीमित अधिकार था, जैसे– दासता स्वीकार करने, बेचने, घर से निकालने, यहाँ तक कि मृत्यु–दंड आदि के अधिकार। कई स्थानों में उन्हें घर से बाहर निकलने की भी अनुमति नहीं थी। सन् 1929 के बाल–विवाह प्रतिबंध अधिनियम में 1978 संशोधित करके विवाह के लिए पुरूष की न्यूनतम आयु 21 वर्ष और स्त्री की 18 वर्ष निर्धारित की गई है। यह संशोधन एक अक्टूबर 1978 से लागू है।

भरण–पोषण– पत्नी का भरण–पोषण करने की पति की जिम्मेदारी विवाह से उत्पन्न होती है। भरण–पोषण का अधिकार व्यक्तिगत विधि में आता है। दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अनुसार भरण–पोषण का अधिकार पत्नी और आश्रित बालकों को ही नहीं दिया गया है, अपितु निर्धन माता–पिता और तलाकशुदा पत्नियों को भी दिया गया है, परन्तु, पत्नी आदि का दावा पति के पास पर्याप्त साधन होने पर निर्भर करता है। सब आश्रित व्यक्तियों के भरण–पोषण का दावा 500 रूपये प्रति माह तक सीमित रखा गया, किन्तु

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.- IV, Issues-38, YEAR- Oct.-Dec.2025

दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2001 (2001 का 50वाँ कानून) के अनुसार यह सीमा हटा दी गई है। दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत भरण–पोषण के अधिकार को शामिल करने से यह एक बहुत बड़ा लाभ हुआ है कि भरण–पोषण की राशि जल्दी और कम खर्च में मिलने लगी है, किन्तु वे तलाकशुदा पत्नियाँ, जिन्हें परम्परागत व्यक्तिगत विधि के अंतर्गत निर्वाह राशि मिलती है, वे दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत भरण–पोषण की हकदार नहीं है।

हिन्दू विधि के अनुसार, पत्नी को अपने पति से भरण–पोषण प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है, किन्तु यदि वह पतिव्रता नहीं रहती है, तो वह अपने इस अधिकार से वंचित हो जाती है। भरण–पोषण का उसका अधिकार हिन्दू दत्तक और भरण–पोषण अधिनियम, 1956 में संहिताबद्ध है। भरण–पोषण की रकम निर्धारित करने में न्यायालय अनेक बातों को ध्यान में रखता है, जैसे पति की स्थिति और देनदारियाँ। न्यायालय इस बात का भी निर्णय करता है कि पत्नी का पति से पृथक् रहना न्यायसंगत है या नहीं। न्यायसंगत मानने योग्य कारण अधिनियम में उल्लिखित है।

मुकदमा चलाने की अवधि के दौरान भरण–पोषण, निर्वाह–व्यय और विवाह संबंधी मुकदमे का खर्च भी या तो पति द्वारा वहन किया जाएगा या पत्नी द्वारा, यदि दूसरे पक्ष (पति या पत्नी) की अपने भरण–पोषण के लिए कोई स्वतंत्र आय नही है। स्थायी भरण–पोषण के भुगतान के बारे में भी यही सिद्धांत लागू होगा।

तलकशुदा मुस्लिम महिलाओं के हितों के संरक्षण तथा तलाक संबंधी बातों के लिए मुस्लिम महिला (तलाक होने पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 है। इस अधिनियम के तहत मुस्लिम महिलाओं को दूसरी बातों के अलावा, ये अधिकार भी प्राप्त है– (क) 'इद्दत' के दौरान पूर्व पति द्वारा उचित और न्यायसंगत निर्वाह–भत्ता हर बच्चे के जन्म के बाद दो साल तक मिलेगा, (ख) यदि तलाक के पहले या बाद में हर बच्चों का भरण–पोषण तलकशुदा महिला खुद करती है, तो उसके पूर्व पति द्वारा उचित और न्यायसंगत निर्वाह भत्ता हर बच्चे के जन्म के बाद दो साल तक मिलेगा, (ग) 'मेहर' या 'डावर' राशि (पति की मृत्यु पर पत्नी को मिलने वाला हिस्सा), जो भी विवाह के अवसर पर या बाद में मुस्लिम विधि के अनुसार पत्नी को देनी तय हुई हो, उतनी राशि तलाकशुदा महिला को मिलेगी, और (घ) विवाह से पले, विवाह के वक्त या विवाह के बाद पत्नी को उसके मित्रों, पति या पति के रिश्तेदारों से मिली सभी संपत्तियाँ भी तलाकशुदा महिला को प्राप्त होंगी।

इसके अलावा यह कानून इद्दत के बाद खुद का भरण–पोषण न कर सकने वाली तलाकशुदा मुस्लिम महिला के लिए भी प्रावधान करता है। इसके अनुसार मजिस्ट्रेट ऐसी महिला की संपत्ति है। ऐसे आदेश देते वक्त मजिस्ट्रेट महिला की जरूरतों, उसके विवाहित जीवन के स्तर और वारिसों की आय को ध्यान में रखेगा। यह निर्वाह–भत्ता, वारिसों द्वारा उसी अनुपात में दिया जाएगा, जिसे अनुपात में वे उस महिला की संपत्ति के उत्तराधिकारी बनेंगे तथा ये उसे उस अवधि में निर्वाह–भत्ता देते रहेंगे, जो मजिस्ट्रेट ने आदेश में कहा होगा।

अगर उस महिला के बच्चे हैं तो मजिस्ट्रेट सिर्फ बच्चों को ही निर्वाह–भत्ता देने को कहेगा, लेकिन बच्चों को भत्ता न दे सकने की दशा वह तलाकशुदा महिला के माता–पिता को निर्वाह–भत्ता देने का आदेश देगा। यदि महिला के रिश्तेदार न हों तो या वे महिला का भरण–पोषण करने में असमर्थ हों, तो ऐसी हाल में मजिस्ट्रेट वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 13 के तहत बनाए गए उस राज्य के वक्फ बोर्ड को, जो इस महिला के निवास स्थान के क्षेत्र में कार्यरत्त हो, तलाकशुदा महिला को उचित निर्वाह–भत्ता देने का आदेश देगा।

पारसी विवाह और विवाह–विच्छेद अधिनियम, 1936 में पत्नी को मुकदमे के दौरान निर्वाह–व्यय एवं स्थायी निर्वाह–व्यय, देने की व्यवस्था है। जिस अवधि के दौरान विवाह विषयक वाद न्यायालय में चलता है, उसके लिए न्यायालय अधिकतम रकम, पति को शुद्ध आय का पाँचावां भाग, पत्नी को दिला सकता है। न्यायालय स्थायी भरण–पोषण की राशि तय करने में उचित भुगतान करने की पति की क्षमता, पत्नी की अपनी धन–संपत्ति और दोनों पक्षों के आचरण को ध्यान में रखते हुए निर्णय करेगा कि न्यायसंगत क्या है? यह आदेश तब तक प्रभावी रहेगा, जब तक पत्नी पतिव्रता और अविवाहित रहेगी।

ईसाई पत्नी के भरण–पोषण के अधिकारों के बारे में भारतीय विवाह–विच्छेद अधिनियम, 1869 लागू होता है। इसके उपबंध भी वही है, जो पारसी विधि के अन्तर्गत है और भरण–पोषण, वादकालीन निर्वाह–व्यय एवं स्थायी निर्वाह–व्यय, दोनों को मंजूर करते समय वही बातें ध्यान में रखी जाती है।

उत्तराधिकार– वर्ष 1925 में भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम बनाया गया था। इस अधिनियम का उद्देश्य उन अनेक विधियों को समन्वित करना था, जो उस समय अस्तित्व में थी। मुसलमानों और हिन्दुओं के उत्तराधिकार के विषय में लागू होने वाले कानूनों को इस अधिनियम से अलग रखा गया। उत्तराधिकार संबंधी कानूनों को समन्वित करते समय दो स्पष्ट योजनाओं को गया– प्रथम, भारतीय ईसाइयों, यहूदियों और विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अधीन विवाहित व्यक्तियों के संपत्ति–उत्तराधिकार के बारे में और दूसरे, पारसियों के उत्तराधिकार संबंध अधिकारों के बारे में।

प्रथम योजना में, यानी उन व्यक्तियों के संदर्भ में, जो पारसी नहीं थे, प्रावधान था कि यदि किसी व्यक्ति की बिना वसीयत लिखे मृत्यु हो जाए और उसकी विधवा और पारंपरिक वंश के व्यक्ति जीवित हों तो विधवा एक–तिहाई संपत्ति के नियम की हकदार होगी और शेष उत्तराधिकारी बचे हुए दो–तिहाई हिस्से के हकदार होंगे। बाद में विधवा के अधिकारों को बेहतर बनाने की दृष्टि से इस विधि में संशोधन किया गया और उसमें प्रावधान किया गया कि जहाँ किसी निर्वसीयती की मृत्यु हो जाए और उसकी विधवा जीवित हो तथा कोई पारम्परिक वंशज न हो तथा संपत्ति का शुद्ध मूल्य 5,000 रूपये से अधिक न हो, तो वह संपूर्ण संपत्ति की हकदार होगी। अगर संपत्ति का मूल्य 5,000 रूपये से अधिक होगा, तो वह पाँच हजार रूपये पर चार प्रतिशत ब्याज की हकदार होगी और शेष में वह अपने निर्वसीयत हिस्से की हकदार है। यह अधिनियम किसी व्यक्ति पर अपनी संपत्ति की वसीयत करने के मामले में कोई प्रतिबंध नहीं लगता।

इस कानून की द्वितीय योजना में पारसी निर्वसीयती उत्तराधिकार के लिए प्रावधान है। भारतीय उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 1991 (1991 का 51वाँ) के द्वारा उक्त अधिनियम को इस तरह संशोधित किया गया है, ताकि पुत्रों और पुत्रियों दोनों को अपने पिता की अथवा अपनी माता की संपत्तियों में बराबर में बराबर हिस्सा मिले। इसमें यह भी प्रावधान है कि पारसी अपनी संपत्ति धार्मिक अथवा दान संबंधी कार्यों के लिए भी दे सकते हैं इसमें कोई बन्धन नहीं है। इस कानून के अनुसार जब कोई पारसी वसीयत किए बिना अपने पीछे विधवा अथवा विधुर तथा बच्चे छोड़कर मर जाता है, तो संपत्ति इस तरह बांटी जाएगी, ताकि विधवा अथवा विधुर तथा प्रत्येक बच्चे को बराबर का हिस्सा मिले। इसके अलावा अदि कोई पारसी अपने बच्चों, विधवा अथा विधुर के अलावा अपने पीछे माता अथवा पिता या माता–पिता, दोनों को छोड़कर मर जाता है, तो माता अथवा पिता अथवा दोनों में से प्रत्येक को बच्चेके हिस्से के आधे भाग के बराबर मिलेगा।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e-I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.- IV, Issues-38, YEAR- Oct.-Dec.2025

इस कानून में भारतीय उत्तराधिकार (संशोधन) कानून, 2002 के द्वारा संशोधन किया गया है। ऐसा अनुभव किया जा रहा था कि इस कानून की धारा 32 में विधवाओं के प्रति भेदभाव है। इस भेदभाव को दूर करने के लिए धारा 32 का परंतुक्य हटा दिया गया। इस संशोधित कानून द्वारा धारा 213 में भी संशोधन कर ईसाइयों को अन्य जातियों के समान कर दिया गया है। बे–वसीयत हिंदू की सम्पत्ति के बारे में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 (1956 का 30वाँ) है। यह कानून जम्मू–कश्मीर को छोड़, सारे देश में लागू है। इस कानून की प्रमुख बातें हैं– बे–वसीयत की संपत्ति उत्तराधिकार में पाने के लिए स्त्रियों को भी पुरूषों के समान अधिकार तथा स्त्रीवारिसों के बारे में उनके जीवन तक ही संपत्ति का उपयोग करने की व्यवस्था की समाप्ति।

भ्रूण हत्या– कन्या की भ्रूण हत्या महिलाओं के लिए एक विशेष पहलू है। एक सामाजिक बुराई के रूप में यह फैलती जा रही है। अजन्में बच्चे के लिंग का पता लगाने के परीक्षण को अवैध घोषित किया गया है। इस बारे में प्रसव पूर्व जाँच तकनीक (नियमन और दुरूपयोग पर रोक) कानून, 1994 को एक जनवरी 1996 से देश भर में लागू कर दिया गया है। यह विधायन का एक प्रगतिशील हिस्सा है जो क्या भ्रूण हत्या की सामाजिक बुराई को मिटाने के उद्देश्य से बनाया गया है, जो जन्म से पहले बच्चे के लिंग का पता लगो के अक्सर की जाती है। इन तकनीकों का इस्तेमाल और आनुवांशिकी परामर्श केवल कानून के अंतर्गत पंजीकृत जेनेटिक क्लीनिक, प्रयोगशालाएँ और परामर्श केन्द्र ही कर सकते हैं। भ्रूण के लिंग की जानकारी देने पर रोक हैं कानून के उल्लंघन पर सजा का प्रावधान है।[5]

माँ–बच्चे का स्वास्थ्य– देश में माँ–बच्चे के स्वास्थ्य का मुद्दा सभी के लिए चिंता का विषय है। भारत में प्रसव के दौरान एक लाख में से 407 माताओं की मृत्यु हो जाती है। इस भयंकर समस्या से निपटने के लिए मौजूदा प्रजनन एवं बाल स्वास्थ्य (आर.सी.एच.) कार्यक्रम में दखल देने के कई उपाय सोचे गए हैं। ये हैं पहली रेफरल यूनिटें तय करके प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों/केन्द्रीय स्वास्थ्य केन्द्रों में चौबीसों घंटे प्रजनन सेवाएँ उपलब्ध कराके संस्थागत प्रजनन को बढ़ावा देकर, गर्भवती महिलाओं का शुरू में ही पंजीकरण, ताकि ऐसी पक्की व्यवस्था हो सके कि किसी भी परेशानी या जटिलता की हालत में एहतियाती उपाया किए जा सके और तुरंत आवश्यक कार्यवाही की जा सकें, गर्भावस्था में प्रसव से पहले कम से कम तीन बार जाँच कराना, ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि गर्भ का विकास सही ढ़ंग से हो रहा है और प्रसव पश्चात भी तीन बार जाँच कराना, जिससे प्रसव के बाद माँ के स्वास्थ्य में सेवा प्रसव प्रणाली से जुड़ना और इसके लिए गरीब परिवारों की गर्भवती महिलाओं को अस्पताल पहुँचाने का खर्च जुटाने के वास्ते एक सहायता कोष स्थापित करना, बेहतर सेवाएँ उपलब्ध कराने के उद्देश्य से ए. एन. एम. के कार्यक्षेत्र का विस्तार करना और आई. ई. सी. तथा ट्रेनिंग के जरिए सामुदायिक चेतना पैदा करना है।

कानूनी गर्भपात– भारत में गर्भपात के असुरक्षित तरीके अपनाने के कारण प्रतिवर्ष औसतन 12.5 प्रतिशत महिलाओं की मृत्यु होती है। एस. आर. ए. (आर. जी. आई 1998) के अनुसार असुरक्षित गर्भपात के कारण 8.9 प्रतिशत माताओं की मृत्यु होती है। महिलाओं को स्वास्थ्य संबंधी इस जोखिम से बचाने के लिए गर्भ की चिकित्सीय समापित अधिनियम 1971 लागू किया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत गर्भवती महिलाएँ 20 हफते की गर्भावस्था तक गर्भपात करा सकती है। यदि यह लगे कि गर्भ के परिणामस्वरूप अस्वस्थ बच्चे का जन्म होगा या लगातार गर्भधारण से मौजूदा हालत में माँ को नुकसान होने के संभावना है और बलात्कार के मामले तथा गर्भनिरोधक उपाय विफल हो गए हों तो कानूनी गर्भपात कराया जा सकता है। वर्ष 2003 तक देश में 9,645 मान्यताप्राप्त गर्भपात केन्द्र हैं (भारत, 2003, पृ. 2551)।

नये कानून–

1. 2005– हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम– बेटे और बेटी का पैतृक सम्पत्ति पर समान हक।
2. 2006– तलाक आसान हुआ, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि मतभिन्नता, ठण्डापन और यौन सम्बन्ध से इंकार को क्रूरता माना जाए।
3. 2006– घरेलू हिंसा से बचाव की व्याख्या में अदृश्य हिंसा को दुबारा परिभाषित किया गया, पत्नी से बलात्कार को हिंसा माना।
4. 2006– सुप्रीम कोर्ट ने विवाह के टूटने के कगार पर पहुँचने को तलाक का आधार माना।
5. 2006– विवाह का पंजीयन होना, सुप्रीम कोर्ट ने इस बारे में दिशा निर्देश जारी किये।
6. 2006– समलैगिक विवाह पर सुप्रीम कोर्ट विचार करेगा।

राज्य के नीति निदेशक तत्व सिद्धान्त शासन के अंगों का मार्ग निर्देशन करते हैं। यह सरकार से कल्याणकारी नीति अपनाने की अपेक्षा करते हैं और इस दिशा में उनका मार्ग निर्देशन करते हैं। ये सिद्धान्त निम्न श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं:

1. आर्थिक सुरक्षा सम्बन्धी निर्देशक तत्व।
2. सामाजिक विकास सम्बन्धी निर्देशक तत्व।
3. शासन सम्बन्धी निर्देशक तत्व।
4. अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा सम्बन्धी निर्देशक तत्व।

भारत के कानूनी व्यवस्था सहित महिलाओं का पूर्ण विकास और प्रगति सूनिश्चित करने के लिए अनेक उपाय किये हैं ताकि महिलाओं के लिए समानता के आधार पर मानवधिकारों का उपयोग और उपभोग सुनिश्चित किया जा सके। हमारे देश में स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक एवं आर्थिक अधिकारिता के क्षे में विशेष रूप से महिलाओं के लिए बनाये गये कार्यक्रमों के सकारात्मक परिणाम सामने आये हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. देसाई, रीना : "वीमेन इन माडर्न इण्डिया", पृ0 169–170.
2. वही।
3. मिश्र, प्रीति (2001): हिन्दू महिलाओं के जीवन में धर्म का महत्त्व, आदित्य पब्लिशर्स, वीना, पृ0 145.
4. शर्मा, क्षमा (2001): "स्त्री मेधाबूक्स, दिल्ली, पृ0 13.
5. श्रीवास्तव, के. आर. एन. (2004): भारतीय सामाजिक समस्यायें, के. के. पब्लिकेंशन, इलाहाबाद, पृ0 38.

*****